तित्थयर

पंचदश वर्ष : अक्टूबर १९९१ : षष्ठ अंक

जैन भवन

आ श्री कै[illegible]सूरि ज्ञानमंदिर
श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र, कोबा,
जि. गांधीनगर

आ. के. सा. कोबा

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्र

वर्ष १५ : अंक ६

अक्टूबर १९९१

□

संपादन

गणेश ललवानी

राजकुमारी बेगानी

□

आजीवन : एक सौ एक

वार्षिक शुल्क : दस रुपये

प्रस्तुत अंक : एक रुपया

□

प्रकाशक

जैन भवन

पी-२५ कलाकार स्ट्रीट

कलकत्ता-७००००७

□

मुद्रक

सुराना प्रिन्टिंग वर्क्स

२०५ रवीन्द्र सरणी

कलकत्ता-७

सूची

सिद्धसेन दिवाकरकृत
गुणद्वात्रिंशिका : एक विवेचन १६३

विश्वशान्ति के सन्दर्भ में
नारी की भूमिका १७६

त्रिषष्टि शलाका पुरुष
चरित्र १८८

संकलन १९१

3680

मेड़ता से भेजे गए विज्ञप्ति पत्र का एक चित्र, ई० १८१०

सिद्धसेन दिवाकर कृत

गुणद्वात्रिंशिका : एक विवेचन

डॉ० श्रीधर वासुदेव सोहोनी

[पूर्वानुवृत्ति]

अन्येषां पार्थिवानां भ्रमति दश दिशः कीर्तिरिन्दुप्रभाभा
त्वत्कीर्तेनास्ति शक्तिः पदमपि चलितुं किं भयात्सौकुमार्यात् ।
आः ज्ञातं नैतदेवं श्रुतिपथचकिता तेन गच्छत्यजस्रं
कीर्तिस्त्येषां नृपाणां तव तु नरपते नास्ति कीर्तेरयातम् ॥८॥

अन्वय : अन्येषां पार्थिवानाम् इन्दुप्रभाभा कीर्तिः दश दिशः भ्रमति । (किन्तु) त्वत् कीर्तेः पदमपि चलितुं शक्तिः नास्ति । (एतत्) किं भयात् (वा) सौकुमार्यात् (भवेत्) । आः ज्ञातम् । एतत् एवं न । तेषां नृपाणां कीर्तिः श्रुतिपथचकिता (अस्ति) तेन अजस्रं गच्छति । (हे) नरपते, तव कीर्तेः तु अयातम् नास्ति । (अतः न गच्छति) ।

अर्थ : दूसरे दूसरे राजाओं की कीर्ति चन्द्रमा के प्रकाश की तरह दशो दिशाओं में फैलती ही जाती है किन्तु तुम्हारी कीर्ति में एक डग भी चलने की शक्ति नहीं है । यह चाहे भय से हो चाहे सुकुमारता के कारण । हाँ, समझा । ऐसी बात नहीं है । उन राजाओं की कीर्ति श्रवणमार्ग से चकित —आश्चर्यित है । अर्थात् अनन्त स्थान के लोग उसको सुनने को शेष हैं, इसीलिए वह बराबर चलती रहती है—सबों के पास जाती रहती है । हे राजन्, किन्तु तुम्हारी कीर्ति के लिए कोई ऐसा स्थान या व्यक्ति नहीं है, जहाँ वह पहले से ही नहीं पहुँच चुकी हो । अतः अब वह जाय तो कहाँ ? अर्थात् सर्वत्र फैली हुई तुम्हारी कीर्ति अचल हो गयी है ।

अन्यऽप्यस्मिन्नरपतिकुले पार्थिवा भूतपूर्वा-
स्तैरप्येवं प्रणतसुमुखैरुद्धृता राजवंशाः ।
न त्वेवं नैर्गुरुपरिभवः स्पृष्टपूर्वो यथायं
श्रीस्ते राजन्नरसि रमले सत्यभामासपत्नी ॥९॥

अन्वय : अस्मिन् नरपतिकुले अन्ये अपि पार्थिवाः भूतपूर्वाः । तैः अपि प्रणतसुमुखैः एवं राजवंशाः उद्धृताः । तैः तु एवं गुरुपरिभवः न दृष्टपूर्वः । यथा हे राजन् , अयं (परिभवः) (यतो हि) सत्यभामासपत्नी श्री : ते उरसि रमते ।

अर्थ : इस राजकुल में और भी राजे पहले हो चुके हैं। उन लोगों ने भी नम्रों के प्रति उदारता से इसी प्रकार राजवंशों का उद्धार किया। (अर्थात् जो राजे महाराजे शरण में आये उनका उद्धार किया।) उन लोगों ने इस प्रकार का तिरस्कार कभी पहले नहीं देखा था जैसा कि हे राजन्, यह तुम्हारा तिरस्कार हो रहा है क्योंकि सत्यभामा की सौतिन लक्ष्मी तुम्हारी गोद में खेलती है।

अभिप्राय यह है कि लक्ष्मी और सत्यभामा दोनों ही भगवान् कृष्ण—विष्णुकी पत्नियाँ होने के कारण सौतिन है। सत्यभामा भगवान् कृष्णकी प्यारी पत्नी थी। वे उसे लक्ष्मी की अपेक्षा अधिक मानते थे किन्तु यहाँ तो लक्ष्मी ही तुम्हारी गोद में खेल रही हैं। अतः यह तुम्हारे लिए बड़ी शिकायत की बात हो रही है, जो तुम्हारे पूर्वजों के विषय में नहीं थी। यह व्याज स्तुति है। निन्दा के द्वारा प्रशंसा करना कवि का उद्देश्य है।

अगतिविधुरैर्लक्ष्मीं दृष्ट्वा चिरस्य सहोषितां
यदि किल परैरेकीभूतैर्गुणैस्त्वमुपाश्रितः।
इति गुणजित लोकं मत्वा नरेन्द्र सुरायसे
वदतु गुणवान् बुद्ध्यादीनां गुणः कतमस्तव ॥१०॥

अन्वय : चिरस्य सहोषितां लक्ष्मीं दृष्ट्वा अगतिविधुरैः परैः एकीभूतैः गुणैः त्वं यदि उपाश्रितः किल, इति (कृत्वा) गुणजितं लोकं मत्वा (हे) नरेन्द्र (त्वं) सुरायसे। (अधुना) गुणवान् (जनः) वदतु बुद्ध्यादीनां तव कतमः गुणः (इति)।

अर्थ : बहुत दिनों से तुम्हारे साथ बसी हुई लक्ष्मी को देखकर दूसरी कोई गति न रहने से दुःखित दूसरे सम्मिलित गुणों ने यदि निश्चित रूप से तुम्हारा आश्रय लिया तो इस लिए हे राजन्, तुम देवतुल्य हो गये हो। अब कोई भी गुणी व्यक्ति यह बतावे कि तुम में बुद्धि आदि गुणों में से कौन सा गुण है? अभिप्राय यह है कि तुम में कोई एक गुण नहीं है बल्कि सारे के सारे गुण तुम में स्वयं आकर मिल गये हैं जिससे तुम देवता के समान हो गये हो। गुणों के एकत्र होकर तुम्हारे पास आने का कारण यह है कि गुणों के लिये तुम्हारे पास आने के सिवा कोई दूसरी गति ही नहीं थी क्योंकि लक्ष्मी तो बहुत दिनों से तुम्हारे ही साथ बसी हुई है। जब लक्ष्मी कहीं और जगह है ही नहीं तो बेचारे गुण जाँय कहाँ?

गन्धद्विपो मधुकरानिव पङ्कजेभ्यो
दानेन यो रिपुगणान् हरसिप्रवीरान् ।
चित्रं किमत्र यदि तस्य तवैव राज-
न्नाज्ञां वहन्ति वसुधाधिपमौलिमालाः ॥११॥

अन्वय : (हे) राजन्, मधुकरान् गन्धद्विप इव पंकजेभ्यः (निःसार्य) यः (त्वं) दानेन प्रवीरान् रिपुगणान् हरसि, तस्य तव एव आज्ञां यदि वसुधाधिप-मौलिमालाः वहन्ति (तर्हि) अत्र किं चित्रम् ?

अर्थ : हे राजन्, जैसे मदवाला हाथी अपने मद-वारि से भ्रमरों को कमल से (निकालकर अपनी ओर खींच लेता है) वैसे ही तुम अपनी दानशीलता से शत्रुओं को अपनी ओर आकृष्ट कर लेते हो । यहाँ ('दानेन' में श्लेष है । गज के पक्ष में "दानवारि से" और राजा के पक्ष में "दान से" अर्थ होगा ।) ऐसे तुम्हारी ही आज्ञा को यदि पृथ्वी के सभी नरेशों का समूह पालन करता है, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ? अभिप्राय यह है कि जब सभी नरेशों को धन का दान देकर तुम अपनी ओर आकृष्ट कर लेते हो, अपने में मिला लेते हो तो वे सभी नरेश तुम्हारी ही आज्ञा को मानते हैं, यह तो स्वाभाविक ही है, इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं ।

एकेयं वसुधा बहूनि दिवसान्यासीद् बहूनां प्रिया
वस्यान्योऽन्यसुखाः कथं नरपते ते भद्रशीला नृपाः ।
ईर्ष्यामत्सरितेन साद्य भवतैवात्माङ्कमारोपिता
शेषैस्त्वत्परितोषभावितगुणैर्गोपालवत् पाल्यते ॥१२॥

अन्वय : इयं एका वसुधा बहूनि दिवसानि (यावत्) बहूनां प्रिया आसीत् । हे नरपते, वस्यान्योन्यसुखाः ते नृपाः कथं भद्रशीलाः ? अद्य सा ईर्ष्यामत्सरितेन भवता आत्मांकम् आरोपिता । त्वत् परितोषभावितगुणैः शेषैः (नृपैः) (सा वसुधा) गोपालवत् पाल्यते ।

अर्थ : यह एक पृथ्वी बहुत दिनों तक बहुतों की प्रिया बनी रही । हे राजन्, परस्पर वाँछित सुखवाले वे नरेश सदाचारी कैसे हुए ? (एक स्त्री को बहुतों के द्वारा रखा जाना सदाचार के विरुद्ध है ।) वही वसुधा आज ईर्ष्या और क्रोध से तुम्हारे द्वारा अपनी गोद में बैठा ली गयी है । तुम्हारे सन्तोष से प्रभावित गुणवाले शेष राजे अब गोपाल की तरह उसका पालन करते हैं ।

अभिप्राय यह है कि एक पृथ्वी पर कई राजाओं ने बहुत दिनों तक राज्य किया । अर्थात् सम्पूर्ण पृथ्वी पर किसी एक का राज्य नहीं हुआ । वे

सभी राजे (आपस में मिलकर) अपने इच्छित सुखका उपभोग करते रहे। यहाँ प्रिया शब्द में श्लेष है। 'प्रिया' अर्थात् पत्नी, और 'प्रिया' अर्थात् प्यारी। बहुतों का एक पत्नी को मिलकर रखना सदाचार-विरुद्ध है। फिर यह एक आक्षेप इस राजा पर भी है कि जिसका उपभोग अनेकों ने किया उसको तुम ने अपनी गोद में बैठाया यह तुमने भी अनुचित ही किया। अब, जब कि वसुधा रूपी 'प्रिया' को तुमने अंगीकार कर लिया है, तब और छोटे-छोटे राजे-महाराजे उसका पालन वैसे ही करते हैं जैसे ग्वाला गाय का पालन करता है। अर्थात् गाय का पालन तो ग्वाला करता है। किन्तु उसका दूध दूसरे ही खाते हैं, ग्वाला नहीं खाता। वैसे ही तुम्हारे अधीन रहने वाले और अन्य नरेश तुम्हारे आदेश से 'वसुधा' का पालन तो करते हैं किन्तु उसका उपभोग तुम्हीं करते हो क्योंकि अब सारी वसुधा एक मात्र तुम्हारी ही है।

'दिवस' शब्द का प्रयोग पुलिंग में होता है किन्तु यहाँ क्लीव लिंग में है। अमरकोष में "दिवसवासरौ"—पुलिंग में प्रयोग है। "ते हि नो दिवसा गताः" में भी पुलिंग ही है। अर्धर्चादिगण पाठ मान कर क्लीव लिंग भी हो सकता है। यदि इसको "बहूह्नि दिवसानासीते" ऐसा पाठ कर दिया जाय तो छन्द भंग भी नहीं होता है और पुलिंग भी हो जाते हैं। आर्या सप्तशती में क्लीव लिंग में भी एक जगह प्रयोग हुआ है—"द्राघयता दिवसानि त्वदीयविरहेण तीव्रतापेन।"

टिप्पणी : इस श्लोक में 'वस्य' शब्द विचारणीय है। 'वस्य' शब्द कहीं किसी कोष में नहीं है। 'वस निवासे' धातु से 'यत्' प्रत्यय करके 'वस्य' बनाया जा सकता है किन्तु उसका कोई उपयुक्त अर्थ यहाँ नहीं बैठता। दूसरी बात कि इस प्रकार का प्रयोग मुझे कहीं नहीं मिला है। अमर कोष के अनुसार 'वस्त्य' शब्द गृहवाची है। "निशान्तवस्त्यसदनं भवनागारमन्दिरम्"—अमरकोष, द्वितीय काण्ड, पुरवर्ग ५। यदि इसको 'वस्त्यान्योंन्यसुखाः' मान लिया जाय तो इसका अर्थ 'परस्पर गृह-सुख प्राप्त करने वाले' ऐसा हो सकता है। मेरी समझ में इसको 'वश्य' होना चाहिए। 'वश् कान्तौ' धातु से 'यत्' प्रत्यय करने पर 'वश्य' बनेगा जिसका अर्थ होगा अभीष्ट-इच्छित-कामनायुक्त। तब इस वाक्यांश का अर्थ होगा "परस्पर इच्छित सुख प्राप्त करने वाले' जो अर्थ संगत जंचता है। अतः इसको 'वश्य' मानना ही उचित है। यद्वा 'वशंगतः' इस सूत्र

से तद्धितान्त 'वश्य' शब्द हो सकता है जिसका अर्थ होगा 'वशीभूत' वश में रहने वाला। दोनों ही प्रकार की व्युत्पत्ति में 'वस्य' को 'वश्य' ही मानना उचित प्रतीत होता है।

गृहाध्यक्षाः सिंहाः प्रमदवनचरा द्वीपीशार्दूलपोताः
कराग्रैः सिच्यन्ते वनगजकलभैर्दीर्घिका तीरवृक्षाः।
पुरद्वाररक्षा दिशिदिशिमहिषा यूथगुल्माग्रशूराः
कषानुध्यातानामति ललितमिदं जायेत विद्विषां ते ।।१३।।

अन्वय : रुषा अनुध्यातानां ते विद्विषां इदम् अति ललितं जायते। (किं तत् ?) सिंहाः (तेषां) गृहाध्यक्षाः (भवन्ति), द्वीपिशार्दूलपोताः तेषां प्रमदवनचराः (भवन्ति), (तेषां) दीर्घिकातीरवृक्षाः वनगजकलभैः कराग्रैः सिच्यन्ते। दिशिदिशि यूथगुल्माग्रशूराः महिषाः पुरद्वाररक्षाः (भवन्ति)।

अर्थ : अपने जिन शत्रुओं को तुम क्रोध की दृष्टि से देखते हो उनकी ऐसी विचित्र हालत हो जाती है कि उनके घरों के अध्यक्ष सिंह हो जाते हैं। उनके प्रमोद-उद्यानों में बाघ और चीते विचरण करने लगते हैं। उनके तालाबों के किनारे लगे वृक्षों को जंगली हाथी के बच्चे अपने सूँड़ों से सींचने लगते हैं। उनके नगर के द्वाररक्षक चारों ओर अपने समूह के सेनानी भैंसे बन जाते हैं। (यह एक विचित्र लीला-सी हो जाती है।)

अभिप्राय यह है कि जिन शत्रुओं पर तुम्हारा क्रोध हो जाता है उनके नगर और राज भवन आदि सब के सब घोर जंगल के रूप में परिणत हो जाते हैं।

निर्मूलोच्छिन्नमूला भुजरिघ परिस्पन्द दृप्तैर्नरेन्द्रैः
संक्षिप्त श्री वितानाः नरपति पतिभिः शत्रुवंशा क्रियन्ते।
किंत्वेतद्राजवृत्तं स्वरुचिपरिचयः शक्ति संपन्नतेयं
मङ्क्त्वा यच्छत्रुवंशानुचित ज्ञात गुणानै राष्ट्रलक्ष्म्या करोषि ।।१४।।

अन्वय : भुजपरिघपरिस्पन्ददृप्तैः नरेन्द्रैः मृगपतिमतिभिः शत्रु वंशाः निर्मूलोच्छिन्नमूलाः संक्षिप्तश्रीबितानाः (च) क्रियन्ते। किन्तु एतत् (तव) राजवृत्तं, स्वरुचि परिचयः, (वा) इयं (तव) शक्तिसम्पन्नता (अस्ति) यत् शत्रुवंशान् मङ्क्त्वा राष्ट्रलक्ष्म्या (पुनः) उचित्ज्ञातगुणान् करोषि।

अर्थ : अपने भुजबल से गर्वीले अन्य राजे जो अपने को सिंह के समान स्वामी समझते हैं, शत्रुओं के देशों को समूल नाश कर देते हैं और उनकी

सम्पत्ति को भी कम कर देते हैं। किन्तु तुम्हारी परम्परा यह है अथवा यह तुम्हारी रुचि का परिचय देता है, या तुम्हारी शक्तिशालिता के कारण है कि तुम अपने शत्रुओं के वंश को तोड़कर—परास्त कर फिर उनको अपने राष्ट्र की सम्पति से उचितरूप से सौगुना अधिक बना देते हो।

कवि यहाँ दूसरे राजाओं से इस अपने वर्णनीय राजा की विशेषता प्रदर्शित करते हैं। और विजय करने वाले राजे तो अपने शत्रुओं के देशों को निर्मूल ही कर डालते हैं किन्तु तुम उनको परास्त कर शरणापन्न होने पर फिर उनको सौगुना अधिक सम्पन्न कर देते हो।

सर्वेऽप्येकमुखा गुणा गुणपतिं मानं विना निर्गुणा
इत्सेवंगुण वत्सलैनृपतिभिमानिः पारिष्वज्यते।
नाश्चेष तदापि किं च भवता लब्धास्पदस्तेष्वसौ
मत्तेनेव गजेन कोमल तरूर्निर्मूलमुत्खन्यते ॥१५॥

अन्वय : एकमुखाः सर्वेऽपि गुणाः गुणपतिं मानं विना निर्गुणाः (सन्ति) इति एवं गुणवत्सलैः नृपतिभिः मानः परिष्वज्यते। एष तवापि च अन्यः न। किं च असौ (मानः) तेषु लब्धास्पदः मत्तेन गजेन कोमलतरुरिव समूलमुत्खन्यते।

अर्थ : एक प्रधान वाले सभी गुण गुणों के पति मान के विना निर्गुण—गुणहीन रहते हैं। इसीलिये गुणों को चाहनेवाले राजागण मान को हृदय से लगाते हैं। यही बात तुम में भी है, दूसरी नहीं। अर्थात् तुम भी मान को रखते हो। दूसरी बात यह है कि वह मान जब दूसरे नृपों के पास रहता है तो तुम उसे उसी तरह उखाड़ फेंकते हो। अर्थात् तुम मानियों का मान-मर्दन करते हो।

यत्प्राप्नोति यशस्तव क्षितिपते भ्रूभेदमुत्यादयन्
किं तत्वच्चरणोपसन्नमुकुटः प्राप्नोति कश्चिन्नृपः।
इत्येवं कुकते स वल्लभ यशास्त्वच्छासनातिक्रमं
दर्पात्सूचित सन्मुखो न हि मृगः सिंहस्य न ख्याप्यते ॥१६

अन्वय : हे क्षितिपते, कश्चित् नृपः तव भ्रूभेदमुत्पादयन् यत् यशः प्राप्नोति, किं तत् (यशः) त्वत्-चरणोपसन्न-मुकुटः प्राप्नोति? इति एवं (प्रकारेण) स वल्लभयशाः त्वत् शासनातिक्रमं कुरुते। दर्पात् सूचितसंमुखः मृगः सिंहस्य न हि न ख्याप्यते?

अर्थ : हे भूपते, कोई राजा तुम्हारे क्रोध को उत्पन्न करके जो यश प्राप्त करता है क्या वह (यश) तुम्हारे चरणों में अपने मुकुट को रखने वाला (राजा) प्राप्त करता है ? अर्थात् नहीं। इस प्रकार यश को चाहनेवाला राजा तुम्हारी आज्ञा का उल्लंघन करता है। क्या गर्व से सिंह के सम्मुख जानेवाला मृग प्रसिद्ध नहीं होता है ? अर्थात् अवश्य होता है।

यहाँ दो नकार का प्रयोग एक स्वीकार का बोधक है। (Two negatives make an affirmative.)

अभिप्राय यह है कि तुम्हारी आज्ञा का उल्लंघन करके जो तुम्हारे क्रोध को उत्पन्न करता है, उसका भी यश फैलता है कि अमुक राजा ने पृथ्वीपति की आज्ञा का उल्लंघन किया। भले ही उसका परिणाम बहुत बुरा क्यों नहीं हो किन्तु उस व्यक्ति का नाम-यश तो लोगों में फैल ही जाता है। किन्तु जो लोग ऐसा साहस नहीं करते और तुम्हारे चरणों पर अपना शिर रखे रहते हैं, उनका नाम नहीं होता। जैसे यदि कोई मृग गर्व से सिंह के सामने चला जाय तो उसके भी साहस की लोग प्रशंसा करते हैं, भले ही सिंह उसको मार ही क्यों न डाले। अर्थात् तुम्हारे आदेश का उल्लंघन करना आसान नहीं है और जो ऐसा साहस करता है, वह ख्याति प्राप्त करता है। "वरं विरोधोऽपि समं महात्मभिः।"

टिप्पणी : 'दर्पासूचित' की जगह 'दर्पात् सूचित' होना चाहिए। 'दर्पासूचित' का अर्थ संगत नहीं होता है। जब 'दर्प' रहेगा तब वह छिपेगा क्यों ? जब छिपा ही रहेगा तो फिर इसमें उसकी बहादुरी या विशेषता क्या हुई और इससे उसकी ख्याति कैसे होगी ? यों तो सभी मृग सिंह के डर से छिपे रहते ही हैं।

प्रसादयदि निम्नगाः कलुषिताम्भसः प्रावृषा
पुनर्नवसुखं करोति कुमुदैः सरः संगमम्।
विघाटयति दिंमुखान्यव पुनाति चन्द्रप्रभां
तथापि च दुरात्मानांशरदरोचिका त्वविद्वषाम्॥१७

अन्वय : शरद् प्रावृषा कलुषितांभसः निम्नगाः प्रसादयति। कुमुदैः पुनर्नवसुखं सरःसङ्गमं करोति। दिङ्मुखानि विघाटयति। चन्द्रप्रभाम् अवपुनाति। तथापि दुरात्मनां त्वद्द्विषां (शरद्) अरोचिका (भवति)।

अर्थ : शरद ऋतु वर्षा ऋतु के कारण गन्दी हुई नदियों को स्वच्छ करती है। फिर से नये सुखमय कुमुदों का तालाबों से सङ्गम कराती है। सभी

दिशाओं के मुख को खोल देती है। चाँदनी को साफ करती है। तो भी तुम्हारे दुरात्मा शत्रुओं को शरद् ऋतु अच्छी नहीं लगती।

अभिप्राय यह है कि शरद् ऋतु सबों के लिए सर्वथा आनन्ददायक है किन्तु तुम्हारे शत्रुओं के लिए कष्टदायक है क्योंकि शरद ऋतु में ही राजा लोग विजय यात्रा करते हैं और अपने शत्रुओं पर आक्रमण करते हैं।

टिप्पणी : इसमें "अरोचक" शब्द चिन्तनीय है। यह 'शरद्' का विशेषण है। 'शरद' शब्द स्त्रीलिंग है। अतः इसका विशेषण भी स्त्रीलिंग ही होना चाहिये। डा० जैन ने तो 'अरोचकः' पुंलिंग प्रयोग किया है जो नहीं होना चाहिए। स्त्रीलिंग विशेष्य का विशेषण पुलिंग हो ही नहीं सकता।

डा० क्रोजे ने इसमें संशोधन किया है और 'अरोचकः' के स्थान में 'अरोचका' लिखा है किन्तु व्याकरण से यह भी शुद्ध नहीं है। 'अरोचक' शब्द से स्त्रीलिंग में 'टाप्' या 'आप्' प्रत्यय करने पर "प्रत्ययस्थात्……०" इत्यादि सूत्र से 'अ' का 'इत्' 'इ' हो जायेगा। जैसे—पाचक-पाचिका, पाठक-पाठिका, सेवक-सेविका। अतः 'अरोचक' का स्त्रीलिंग में रूप "अरोचिका" होगा न कि 'अरोचका'। इस प्रकार डा० जैन और डा० क्रौजे दोनों ही ने इसमें भूल की है। डा० क्रौजे तो कुछ हद तक ठीक हैं क्योंकि उन्होंने कम से कम 'शरद्' का विशेषण स्त्रीलिंग तो बनाया है, भले ही व्याकरण की बारीकी उनके ध्यान में नहीं आई हो।

'अवपुनाति' में 'अव' उपसर्ग पर सन्देह नहीं करना चाहिये। कहीं-कहीं 'अव' साफ के अर्थ में भी आता है जैसे— 'अवदात'—स्वच्छ।

न वेद्मि कथमप्ययं सुररहस्यभेदः
कृतस्तया युधि हतः परं पदमुपैति विष्णोर्यथा।
अतः प्रणयसंसृतामविगणय्य
लक्ष्मीमसौ करोति तव सायकक्षममुरसिषित्सुर्नृपः ॥१८

अन्वय : त्वया युधि हतः यथा विष्णोः परं पदमुपैति (इति) अयं सुररहस्पभेदः कथं कृतः (इति) न वेद्मि। अतः असौ सिषित्सुः नृपः प्रणय संसृतां लक्ष्मीम् अविगणय्य तव सायकक्षमम् उरः करोति।

अर्थ : युद्ध में तुम्हारे द्वारा मारा गया (व्यक्ति) जिस प्रकार विष्णु के परम पद को या विष्णु के दूसरे पद को प्राप्त करता है यह देवताओं के लिए

भी रहस्य का विषय था उसे उद्घाटन क्यों किया गया यह समझ में नहीं आता। इसीलिए (इस प्रकार की) सिद्धि चाटने वाला राजा प्रेम पूर्वक आयी हुई लक्ष्मी की परवाह न कर अपनी छाती तुम्हारे वाणों के योग्य बना लेता है।

अभिप्राय यह है कि युद्ध में तुम्हारे द्वारा मारे गये लोग विष्णु के परम पद को—मोक्ष को पा लेता हैं। यह रहस्य देवताओं के लिए भी गोपनीय था जो न जाने कैसे खुल गया और लोग यह जान गये। इसीलिये जो राजा इस प्रकार की मोक्षरूपी सिद्धि की इच्छा करने वाले हैं, वे प्रेमपूर्वक आयी हुई अपनी राजलक्ष्मी की भी उपेक्षा करके तुम्हारे बाणों के सामने अपनी छाती खोलकर तैयार हो जाते हैं। इसका कारण यह है कि वे तुम्हारे वाणों से अपनी रक्षा तो कर नहीं सकते या तुम्हारा सामना कर नहीं सकते इसलिए तुम्हारे बाणों के सामने छाती खोल देते हैं या यह जानकर छाती खोल देते हैं कि मरने पर परम पद प्राप्त होगा।

टिप्पणी : इस श्लोक में 'सायकक्षमं' और 'सायकक्षतं' शब्द विचारणीय है। डा० जैन ने 'सायकक्षतं' पाठ दिया है और इसके समर्थन में तर्क भी दिये हैं। डा० क्रौजे ने 'सायकक्षमं' पाठ दिया है। मेरी समझ में डा० क्रौजे का पाठ ही उपयुक्त है। डा० जैन ने लिखा है कि 'सायकक्षमं' का अर्थ प्रसंग में नहीं बैठता किन्तु मैं देखता हूँ कि 'सायकक्षतं' का ही कोई अर्थ नहीं बैठता है। साथ ही पूर्व और पर के पदों से भी अन्वय नहीं बैठता। डा० क्रौजे ने "नृपः" का प्रयोग किया है, किन्तु डा० जैन ने "नृप" सम्बोधन का प्रयोग किया है। डा० जैन ने "सायकः" प्रथमान्त प्रयोग किया है और डा० क्रौजे ने "सायकक्षमं" समस्त पद का प्रयोग किया है। डा० क्रौजे के अनुसार "सिषित्सुः" "नृपः" का विशेषण है, किन्तु डा० जैन के अनुसार वह "सायकः" का विशेषण है। डा० जैन के पाठ को मान लेने पर तृतीय चरण में प्रयुक्त "असौ" शब्द भी "सायक" का ही बोधक हो जायेगा और "अविगणय्य" क्रिया का कर्त्ता भी "सायक" ही हो जायेगा। ये सब प्रकृत प्रसंग में उपयुक्त नहीं होते हैं। कोई राजा अपनी तलवार से अपनी ही छाती काट लेगा, यह स्वाभाविक प्रतीत नहीं होता। अतः मेरी समझ से इस श्लोक के चतुर्थ चरण का पाठ जो डा० क्रौजे ने दिया है, वही शुद्ध उपयोगी और सार्थक है। डा० जैन के पाठ में खींचातानी करके अर्थ बैठाना पड़ेगा। अतः वह उपयुक्त नहीं जँचता। दूसरी बात यह है कि

डा० जैन का पाठ व्याकरण की दृष्टि से सर्वथा अशुद्ध है। "क्षतं" शब्द 'क्त' प्रत्ययान्त है और 'क्त' प्रत्यय कर्मवाच्य में होता है। कर्तृवाच्य में 'क्त' प्रत्यय नहीं होता। पाणिनि का सूत्र है—"तयोरेव कृत्यक्त खलर्थाः" अर्थात् 'क्त' प्रत्यय भाववाच्य और कर्मवाच्य में ही होता है। अतः "सायकः क्षतं" नहीं हो सकता, 'सायकेन क्षतं' होगा। इस हालत में फिर "असौ" और "सिषित्सुः" इन दोनों में तृतीया हो जायेगी। आश्चर्य है कि डा० जैन का ध्यान इन व्याकरण की त्रुटियों की ओर नहीं गया।

अन्योन्यावेक्षया स्त्री भवति गुणवती प्रायशोविप्लुता वा
लोक प्रत्यक्षमेतात्क्षितिविषमतया चंचला श्रीर्यथासीत्।
सेवान्यप्रीतिदानास्तव भुजवलयान्तः पुरप्राप्यमाना
मुर्वीं दृष्ट्वा यथावत्सुलघु सुचरिता हार सख्यं करोति ॥१६

अन्वय : एतत् लोक प्रत्यक्षं (यत्) अन्योन्यावेक्षया प्रायशः स्त्री गुणवती विप्लुता वा भवति। यथा क्षितिविषमतया (तव) श्रीः चञ्चला आसीत्। सा एव (श्रीः) प्रीतिदानात् तव भुजवलयान्तः पुरप्राप्तमानां, उर्वीं दृष्ट्वा यथावत् सुचरिता सलघु हारसख्यं करोति।

अर्थ : यह संसार के सामने प्रत्यक्ष है कि एक दूसरी की देखादेखी से स्त्री प्रायः सच्चरित्रा या दुश्चरित्रा हो जाती है। जैसे कि तुम्हारी लक्ष्मी पृथ्वी की असमानता के कारण अबतक चञ्चला थी। अब वही लक्ष्मी प्रेम करने से, तुम्हारी भुजाओं की परिधि रूपी रनिवास में सम्मान प्राप्त कर रही पृथ्वी को देखकर ठीक-ठीक सुन्दर चरित्र वाली बनकर तुम्हारे गले के हार के साथ शीघ्रता से मित्रता कर रही है। अर्थात् जब तक तुम्हारी पृथ्वी स्थिर नहीं थी तब तक तुम्हारी लक्ष्मी भी स्थिर नहीं थी। अब जब पृथ्वी तुम्हारी भुजाओं में लिपटकर सम्मान पाती हुई स्थिर हो गयी तब उसकी देखादेखी तुम्हारी लक्ष्मी भी तुम्हारे गले के हार के समान स्थिर हो गयी है क्योंकि स्त्रियाँ प्रायः एक दूसरी की देखादेखी अपने आचरण और व्यवहार में परिवर्तन करती हैं—यह लोक सिद्ध है।

टिप्पणी : इस श्लोक के पाठ में भी डा० जैन और डा० क्रौजे में अन्तर है। इसमें भी डा० क्रौजे का पाठ ही मुझे उपयुक्त जंचता है। डा०जैन ने प्रथम चरण में 'विष्णता' पाठ दिया है जो कोई प्रचलित अर्थ नहीं रखता। डा० क्रौजे ने 'विप्लुता' पाठ दिया है जो सार्थक है और 'गुणवती' का विरोधार्थक है। फिर चतुर्थ चरण में डा० जैन ने 'दयावत्' पाठ दिया

है और क्रौजे ने 'यथावत्' पाठ दिया है। यहाँ भी प्रसंगानुसार 'दयावत्' निरर्थक लगता है और 'यथावत्' सार्थक। डा० जैन ने 'संख्यं' पाठ दिया है और उसका अर्थ 'युद्ध' किया है। जब 'हार' के साथ लक्ष्मी युद्ध करेगी तो फिर उसमें स्थिरता कहाँ रही जो कवि को सिद्ध करना है। फिर युद्ध में 'दया' का स्थान कहाँ है? अतः 'दयावत्' और 'संख्यं' ये दोनों ही पाठ अनुपयुक्त हैं और डा० क्रौजे के द्वारा दिया गया 'यथावत्' और 'सख्यं' पाठ ही उपयुक्त है। पुनः तृतीय चरण के अन्त में 'प्राप्तमानां' और 'प्राप्यमानां' में सन्देह हो सकता है किन्तु अधिक उपयुक्त 'प्राप्तमानां' ही प्रतीत होता है और यही पाठ दोनों विद्वानों ने दिया है। (प्राप्तः मानः यया सा 'प्राप्तमाना' तां= प्राप्तमानां पृथ्वीं दृष्ट्वा)। 'प्राप्यमानां' का अर्थ होगा 'प्राप्त करती हुई' क्योंकि 'शानच्' प्रत्यय लट् लकार के अर्थ में होता है—वर्तमान काल में। "लट्ः शतृशानचौ अप्रथमासमानाधिकरणे"—पाणिनिसूत्र और "वर्तमाने लट्"—पाणिनिसूत्र। 'शानच्' करने पर उसका अर्थ होगा कि अभी पृथ्वी राजा के भुजाओं की परिधि के अन्तःपुर में प्रवेश कर रही है—कर नहीं चुकी है। "प्राप्तमानां" का अर्थ उपयुक्त है जिसका अभिप्राय है कि अन्तःपुर में उसको सम्मान प्राप्त हो चुका है। अतः दोनों पुस्तकों में दिया हुआ "प्राप्तमानां" पाठ ही उचित है।

प्रसूतानां वृद्धिः परिणमति निःसंशयकला
पुरावादश्चैष स्थितिरियमजेयेति नियमः।
जगद्वृत्तान्तेऽस्मिन् विवदति तवेयं नरपते
कथं वृद्धा च श्रीर्न च परुषितो यौवनगुणः ।।२०

अन्वय : एष पुरावादः। इयं स्थितिः अजेया इति नियमः। (यत्) प्रसूतानां वृद्धिः निःसंशयफला परिणमति। अस्मिन् जगद् वृत्तान्ते विवदति (सति) हे नरपते इयं तव श्रीः वृद्धा न च (तस्याः) यौवनगुणः परुषितः इति कथम्?

अर्थ : यह एक पुरानी प्रसिद्धि है और यह स्थिति एक अजेय नियम है कि जो जन्म लेता है उसकी वृद्धि होती है और उसका निःसंदिग्ध फल उसमें विकार होता है। संसार में इस वास्तविकताके प्रचारित रहने पर भी, हे राजन् यह तुम्हारी लक्ष्मी बढ़ी (वृद्धा हुई) किन्तु इस की जवानी के गुण में कठोर क्यों नहीं हुई, यह एक आश्चर्य है।

टिप्पणी : इस श्लोक के प्रथम चरण के अन्त में डा० जैन 'कला' और

डा० क्रौजे ने 'फला' पाठ दिया है। डा० जैन के अनुसार "संशय की कला" ऐसा अर्थ होगा किन्तु डा० क्रौजे के अनुसार 'जिसका फल निःसंशय हो' ऐसा अर्थ होगा। डा० जैन के पाठ का दूराकृष्ट अर्थ करना पड़ेगा और डा० क्रौजे के पाठ का स्पष्ट, प्रसिद्ध अर्थ है।

इसके तृतीय चरण में 'विवदति' का पाठ दोनों विद्वान् लेखकों ने स्वीकार किया है और दोनों ने इस शब्द का अर्थ 'विवाद करना' किया है। डा० जैन ने अर्थ किया—"Your mode comes into conflict". डा. क्रौजे ने अर्थ किया है—"This your Sri is at variance." दोनों ही विद्वानों ने उसका अर्थ झगड़ा-विवाद करना किया है किन्तु इन विद्वानों की दृष्टि शायद पाणिनि के उस सूत्र की ओर नहीं गयी जिसमें यह नियम है कि विवाद अर्थ में 'वि' पूर्वक 'वद' धातु आत्मनेपदी होता है। सूत्र है—"भासनोपसंभाषा-ज्ञान-यत्न-विमत्युपमंत्रणेषु वदः।" १।३।४७ यथा—"विमतौ-क्षेत्रे विवदन्ते।" कौमुदी। अतः विवाद अर्थ में 'वि' पूर्वक 'वद' धातु आत्मनेपदी होता है— आप्टे ने अपने कोश में लिखा है—"वि (Atm.) to quarrel to dispute. परस्परं विवदमानौ भ्रातरौ, परस्परं विवदमानानां शास्त्राणां Hitopadesa," । अतः मतभेद या विमति के अर्थ में 'वि' पूर्वक 'वद' धातु नित्य आत्मनेपदी होता है। यहाँ परस्मैपद में प्रयोग है "विवदति"। चाहे यह लट् लकार का रूप माना जाय चाहे 'शतृ' प्रत्ययान्त सप्तमी का रूप, दोनों ही स्थितियों में यह परस्मैपद में ही प्रयुक्त हुआ है। अतः यह निःसन्देह है कि इस 'विवदति' का अर्थ विवाद करना नहीं हो सकता। यह सामान्यार्थक 'वि' पूर्वक 'वद' धातु का प्रयोग है जिसका अर्थ है "विशेषेण वदति विवदति।" व्याकरण की इस बारीकी को पकड़ने में दोनों ही विद्वान् चूक गये हैं।

अन्तर्गूढसहस्रलोचनधरं भ्रूभेदवज्रायुधं
कस्त्वा मानुषविग्रहं हरिरिति ज्ञातुं समर्थो नरः।
यद्येते मघवज्जगद्धितरास्त्वा वल्लभाः स्वामिन्-
स्त्वद्भूदेशपटुप्रकीर्णसलिला न ख्यापयेयुर्घनाः ।।२१

अन्वय : अन्तर्गूढसहस्रलोचनधरं, भ्रूभेदवज्रायुधं, मानुषविग्रहं त्वा (त्वां) हरिः इति ज्ञातुं कः नरः समर्थः ? यदि हे मघवन्, जगद्धिततराः, स्वामिनः वल्लभाः, त्वद्-भूदेश-पटु-प्रकीर्ण-सलिलाः एते घनाः त्वा (त्वां) न ख्यापयेयुः।

अर्थ :—भीतर में छिपे हुए हजार नेत्रों को धारण करने वाले, भृकुटि-

भंग रूपी वज्र को रखने वाले तथा मनुष्य का शरीर धरे हुए आपको कौन आदमी इन्द्र समझ सकता है ? (अर्थात् कोई नहीं ।) (किन्तु लोग ऐसा समझते हैं ।) हे मघवन्, पूजनीय, संसार का अधिक हित करने वाले, अपने स्वामी के प्रिय, तुम्हारी पृथ्वी को चतुरता से जल से सींचनेवाले ये मेघ यदि तुमको विख्यात न करें (तो कोई तुमको इन्द्र नहीं समझे ।)

टिप्पणी : इसके तृतीय चरण में "हिततराः" और "हितरताः" दो प्रकार के पाठ डा॰ जैन ने दिये हैं। डा॰ क्रौजे ने एक ही 'हितरता पाठ दिया है। दोनों ही पाठ संगत हो सकते हैं किन्तु "हितरताः" की अपेक्षा 'हिततराः' अधिक उपयुक्त है। हित करने वाले तो और हो सकते हैं किन्तु मेघ अधिक हित करने वाले हैं।

'त्वा' और 'त्वां' दोनों ही रूप व्याकरण से शुद्ध हैं। अतः कवि ने 'त्वां' ही प्रयोग किया है। 'त्वां' और 'त्वा' के प्रयोग में अन्तर यही है कि 'त्वां' का प्रयोग सब जगह हो सकता है किन्तु 'त्वा' का प्रयोग पद के आदि में नहीं होता है। "कस्तत्र त्वा पश्यति" यह शुद्ध है किन्तु "त्वा तत्र कः पश्यति" अशुद्ध है।

[क्रमशः

विश्वशान्ति के सन्दर्भ में नारी की भूमिका

मुनि श्री नेमिचन्द्र

विश्व के सर्वश्रेष्ठ प्राणी मानव की उत्तरदायित्वहीनता

विश्व के समस्त प्राणियों में मानव सर्वश्रेष्ठ प्राणी माना गया है। उसका कारण यह है कि एकमात्र मनुष्य ही मोक्ष का या परमात्मपद-प्राप्ति का अधिकारी है। अन्य किसी भी गति या जाति का प्राणी मोक्ष का अधिकारी नहीं है। सर्वश्रेष्ठ प्राणी होने के नाते मानव पर सबसे अधिक उत्तरदायित्व है कि वह दूसरे प्राणियों के प्रति सहानुभूति, सहृदयता, मैत्री, बन्धुता, करुणा और आत्मीयता रखे। परन्तु वर्तमान युग के अधिकांश मानव ज्ञान और विज्ञान में, बल और बुद्धि में आगे बढ़े हुए होने पर भी उपर्युक्त गुणों से प्रायः कोसों दूर होते जा रहे हैं। इसके कारण क्या परिवार में, क्या समाज में, क्या प्रान्त और राष्ट्र में और क्या जाति और धर्मसंघ में संघर्ष, वैमनस्य, अहंकार वृद्धि, तनातनी एवं अशान्ति फैली हुई है। किसी भी प्रान्त या राष्ट्र में शान्ति के दर्शन दुर्लभ होते जा रहे हैं। एक दृष्टि से यह कहा जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी कि विश्व के समस्त राष्ट्र या छोटे-बड़े देश, उपनिवेश या द्वीप, अथवा महाद्वीप अशान्ति की ज्वाला में धधक रहे हैं। सभी राष्ट्र या महाद्वीप, उपमहाद्वीप आदि एक दूसरे के प्रति सशंक एवं भयभीत हुए हैं। विश्व में प्रायः सर्वत्र अशान्ति का साम्राज्य छाया हुआ है। बड़े-बड़े राष्ट्रों के मान्धाताओं को एक दूसरे पर विश्वास नहीं रह गया है।

विश्व में अशान्ति के कारण

वर्तमान विश्व में अशान्ति के कारणों को खोजा जाए तो मोटे तौर पर निम्नलिखित कारण प्रतीत होंगे :

(१) युद्ध और आतंक की विभीषिका तथा परिवार, समाज और राष्ट्र आदि में स्वार्थों को लेकर आन्तरिक कलह एवं वैमनस्य।

(२) शस्त्रास्त्रवृद्धि, सेनावृद्धि, अणुबम इत्यादि का खतरा।

(३) रंगभेद, जाति-वर्ण-भेद, राष्ट्रभेद, धर्म-सम्प्रदाय-भेद, राजनैतिक पद और सत्ता के लिए कशमकश, स्वार्थ और अहं की टकराहट आदि विषमताएँ।

(४) जुआ, चोरी, डकैती, तस्करी, मांसाहार, मद्यपान, शिकार, वेश्यागमन (या वेश्याकर्म), परस्त्रीगमन (बलात्कार आदि), दहेज के नाम पर नारीहत्या, निर्दोष पशुवध, निर्दोष मानववध, दंगाफसाद, तोड़फोड़, आगजनी, राहजनी, लूटपाट, आदि दुर्व्यसनों की वृद्धि, उपद्रवों और आपसी झगड़ों में वृद्धि, प्राकृतिक प्रकोप, दुःसाध्य रोगों का प्रकोप इत्यादि।

(५) सह-अस्तित्व आदि राष्ट्रीय पंचशील के पालन में शिथिलता एवं स्वार्थत्याग की कमी।

ये और ऐसे ही कुछ कारण हैं, जिनके कारण विश्व में अशान्ति की आग भड़कती है। आज तो विश्व के सभी राष्ट्र, अथवा एक राष्ट्र के सभी गाँव-नगर टेलीविजन, रेडियो, समाचार पत्र आदि के कारण अत्यन्त निकट हो गए हैं। एक छोटे-से गाँव, नगर या राष्ट्र में हुई घटना का प्रभाव फौरन सारे विश्व पर पड़ता है। एक गाँव, नगर या राष्ट्र में किसी भी माध्यम से, किसी भी निमित्त से हुई अशान्ति की चिनगारी बहुत शीघ्र सारे विश्व में फैल जाती है। अशान्ति की वह छोटी-सी चिनगारी व्यापक अग्निकाण्ड बन कर सारे विश्व को महायुद्ध की ज्वाला में झौंक सकती है। अशान्ति बढ़ती है तो मानवजाति सुखशान्तिपूर्वक जी नहीं सकती।

अशान्ति के कारणों को दूर करने के उपाय

यह सत्य है कि विश्व भर में फैली हुई अशान्ति की आग को बुझाने और शान्ति स्थापित करने के लिये अशान्ति के उपर्युक्त कारणों को दूर करना चाहिए। किन्तु इनमें से अधिकांश कारण ऐसे हैं जिन्हें दूर करने के लिए तथा विविध विषमताओं के निवारण के लिए सामूहिक पुरुषार्थ एवं परिस्थिति-परिवर्तन अपेक्षित है।

साथ ही अशान्ति मिटाने और शान्ति तथा समता स्थापित करने के लिये प्रशमभाव, धैर्य, गाम्भीर्य, सहिष्णुता, क्षमा, तितिक्षा, वात्सल्य, विश्वमैत्री, शुद्धप्रेम, सहानुभूति, मानवता, राष्ट्रीय पंचशील-पालन में दृढ़ता, व्यसनमुक्ति, व्रतपालन में दृढ़ता, सिद्धान्तनिष्ठा, आत्मीयता आदि गुणों को अपनाना, तथा ऐसे गुणसम्पन्न व्यक्तियों के प्रति श्रद्धा रख कर चलना भी आवश्यक है।

ये गुण पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं में विशेष रूप से विकसित

यद्यपि पुरुषों में ऐसे महान् पुरुष हुए हैं अथवा हैं, जिन्होंने समाज, राष्ट्र एवं विश्व की शान्ति में योगदान दिया है; किन्तु पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं में ये गुण अपेक्षाकृत अधिक विकसित हैं। देखा गया है पुरुषों की अपेक्षा मातृजाति में प्रायः कोमलता, क्षमा, दया, स्नेहशीलता, वत्सलता, धैर्य, गाम्भीर्य व्रत-नियम-पालन-दृढ़ता, व्यसनत्याग, तपस्या, तितिक्षा आदि गुण प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं, जिनकी विश्वशान्ति के लिए आवश्यकता है। प्राचीन काल में भी कई महिलाओं, विशेषतः जैन साध्वियों ने पुरुषों को युद्ध से विरत किया है। दुराचारी, अत्याचारी एवं दुर्व्यसनी पुरुषों को दुर्गुणों से मुक्त

कराकर, परिवार समाज एवं राष्ट्र में उन्होंने शान्ति की शीतल गंगा बहाई है। कतिपय साध्वियों की अहिंसामयी प्रेरणा से पुरुषों का युद्ध प्रवृत्त मानस बदला है।

साध्वी मदनरेखा ने दो भाइयों को युद्ध विरत कर शान्ति स्थापित की

मिथिलानरेश नमिराज और चन्द्रयश दोनों सहोदर भाई थे। परन्तु उनकी माता मदनरेखा के बिछुड़ जाने से दोनों को यह रहस्य ज्ञात नहीं था। एक बार नमिराज और चन्द्रयश दोनों में एक हाथी को लेकर विवाद बढ़ गया और दोनों में गर्मागर्मी होते-होते परस्पर युद्ध की नौबत आ पहुँची। दोनों ओर की सेनाएँ युद्ध के मैदान में आ डटीं।

महासती मदनरेखा ने जब चन्द्रयश और नमिराज के बीच युद्ध का संवाद सुना तो उनका सुषुप्त मातृहृदय बिलख उठा। वात्सल्यमयी साध्वी ने सोचा—अगर इस युद्ध को न रोका गया तो अज्ञान और मोह के कारण धरती पर रक्त की नदियाँ बह जाएँगी। यह पवित्रभूमि नरमुण्डों से श्मशान बन जाएगी। लाखों के प्राण चले जाएँगे। साध्वीजी का करुणाशील हृदय पसीज उठा। वह युद्धाग्नि को शान्त कर तथा दोनों राज्यों में शान्ति की शीतल हवा फैलाने के लिए अपनी गुरुणीजी की आज्ञा लेकर दो साध्वियों के साथ चल पड़ी युद्ध भूमि के निकटवर्ती चन्द्रयश राजा के खेमे की ओर।

युद्ध भूमि में साध्वियों का आगमन जानकर पहले तो चन्द्रयश चौंका, फिर अपनी वात्सल्यमयी माँ को श्वेतवस्त्रधारिणी तेजस्वी साध्वी के वेष में देखा तो उसने श्रद्धापूर्वक सविनय प्रणाम किया और कुशलमंगल पूछा। साध्वी मदनरेखा ने सारी स्थिति स्पष्ट करते हुए कहा—'वत्स! लाखों निरपराध मानवों के संहार से इस पवित्र भूमि को बचाओ। परस्पर शान्ति और सौहार्द स्थापित करो। नमिराज कोई पराया नहीं, तुम्हारा ही सहोदर छोटा भाई है। मैं तुम दोनों की गृहस्थपक्षीया माँ हूँ।''

यह सुनते ही चन्द्रयश के मन का रोष भ्रातृस्नेह में बदल गया। वह अपने सहोदर छोटे भाई नमिराज से मिलने के लिये मचल पड़ा। साध्वी मदनरेखा वहाँ से नमिराज के निकट पहुँची। उसे भी सारा रहस्य खोल कर समझाया। जब नमिराज को ज्ञात हुआ कि यही उसकी जन्मदात्री माँ है और जिससे वह युद्ध करने को उद्यत हो रहा है, वह उसका सहोदर बड़ा भाई है—बस, नमिराज भी भाई से मिलने को आतुर हो उठा। चन्द्रयश ने ज्योंही नमिराज को आते देखा, भ्रातृवात्सल्यवश दौड़कर बांहों में उठा लिया। फिर छाती से चिपका लिया। दोनों का रोष वात्सल्यभाव में परिणत हो गया।

महासती मदनरेखा की प्रेरणा से युद्ध रुक गया। दोनों ओर की सेना में स्नेह और शान्ति के बादल उमड़ पड़े। युद्ध भूमि शान्ति भूमि बन गई।

यह था—युद्ध से विरत करने और सर्वत्र शान्ति स्थापित करने का एक वात्सल्यमयी साध्वी का पुरुषार्थ।

महासती पद्मावती ने पिता-पुत्र को युद्ध से विरत किया

दूसरा प्रसंग है महासती पद्मावती का जो चम्पानगरी के राजा दधिवाहन की रानी थी। उसका अंगजात पुत्र था करकण्डू। वह एक चाण्डाल के यहाँ पल रहा था। पद्मावती साध्वी बन गई थी। कालान्तर में कंचनपुर के राज्य का कोई उत्तराधिकारी न होने से करकण्डू को राज्य का उत्तराधिकारी घोषित कर दिया गया। राजा करकण्डू और महाराजा दधिवाहन दोनों में एक ब्राह्मण को एक गाँव इनाम में देने को लेकर विवाद खड़ा हो गया। महाराज दधिवाहन ने अहंकारवश कंचनपुर पर चढ़ाई कर दी। करकण्डू राज भी अपनी सेना लेकर युद्ध के मैदान में आ डटा। साध्वी पद्मावती को पता लगा कि एक मामूली-सी बात को लेकर पिता-पुत्र में युद्ध ठनने वाला है। उसका करुणाशील एवं अहिंसापरायण हृदय काँप उठा।

वह अपनी गुरुणीजी की आज्ञा लेकर तुरन्त ही करकण्डू के खेमे में पहुँच गई। एक श्वेतवसना तेजस्वी साध्वी को युद्ध क्षेत्र में देखकर करकण्डू को अत्यन्त आश्चर्य हुआ। उसने श्रद्धावश नतमस्तक होकर युद्ध भूमि में आगमन का कारण पूछा तो साध्वीजी ने वात्सल्यपूर्ण वाणी में कहा—"वत्स! मैं तुम्हारी गृहस्थपक्षीया माता पद्मावती हूँ।" फिर पद्मावती ने उसके जन्म तथा चाण्डालके यहाँ पलनेकी सारी घटना सुनाई तो वह अत्यन्त प्रसन्न हुआ। तत्पश्चात् साध्वी पद्मावती ने कहा—"वत्स! महाराज दधिवाहन तुम्हारे पिता हैं। पिता और पुत्र के बीच अज्ञात रहस्य का पर्दा पड़ा था; इसलिए तुम दोनों एक दूसरे के शत्रु बन कर युद्ध करने पर उतारू हो गए हो। पिता-पुत्र में परस्पर युद्ध होना एक भयंकर बात होगी। युद्ध से अशान्ति ही बढ़ेगी, किसी का भी कल्याण नहीं होगा।"

यह सुन कर करकण्डू राजा का हृदय पिता के प्रति श्रद्धावनत हो गया। उसने श्रद्धावश कहा—"मैं अभी जाता हूँ पिताजी के चरणों में पड़कर उनसे क्षमा मांगता हूँ।"

उधर पद्मावती महासती भी शीघ्रातिशीघ्र राजा दधिवाहन के खेमे में पहुँची और बात-बात में उसने कहा—"करकण्डू चाण्डालपुत्र नहीं, वह आपका ही पुत्र है। मैं ही उसकी माँ हूँ।" यह कह कर रानी ने सारा रहस्योद्घाटन

कर दिया। राजा दधिवाहन का हृदय पुत्र-वात्सल्य से छलछला उठा। वह भी पुत्र मिलन के लिए दौड़ पड़ा। उधर करकण्डू भी पिता से मिलने के लिये दौड़ा हुआ आ रहा था। पिता-पुत्र दोनों हार्दिक स्नेहपूर्वक मिले। पिता ने पुत्र को चरणों में पड़े देख हृदय से आशीर्वाद दिया।

इस प्रकार महासती पद्मावती की सत्प्रेरणा से दोनों जनपदों (देशों) में होने जा रहे भयंकर युद्ध का संकट भी टला और पिता-पुत्र दोनों के बीच स्नेह और शान्ति की रसधारा बह चली।

इस शान्ति और स्नेह की सूत्रधार थी महासती पद्मावती।

शान्ति की अग्रदूत सीता महासती

इसी प्रकार महासती सीता ने जब देखा कि पिता (राम) और उनके दोनों पुत्रों (लव और कुश) में भयंकर युद्ध की नौबत आ गई है, अगर मैंने बीचबिचाव नहीं किया तो ये दोनों वीर पुत्र अपने पिता पर ही शस्त्र-प्रहार कर बैठेंगे, तब यह दोनों पक्षों की अशान्ति की आग व्यापक रूप धारण करके सारे कुल को भस्म कर देगी। अतः सीता झटपट अपने पुत्रों के पास पहुँची और समझाया कि "बेटे ! क्या कर रहे हो ? जरा सोचो, किस पर शस्त्र प्रहार कर रहे हो ? ये तुम्हारे पिता है।" पहले तो वे दोनों झुंझलायें, परन्तु बाद में माता के कहने से रुक गए। उधर सीता ने रामचन्द्र जी से भी कहा—"नाथ ! ये आपके ही पुत्र हैं। इन पर वात्सल्य बरसाने के बदले आप शस्त्र बरसा रहे हैं ? हृदय से लगाइए, आशीर्वाद दीजिए।" इस प्रकार कहने पर श्री राम ने अपने दोनों पुत्रों को छाती से लगाया और आशीर्वाद दिया। युद्ध बंद हो गया। यह था सीता महासती द्वारा युद्ध बंदी द्वारा शान्ति का समयोचित उपक्रम।

सती द्रौपदी की क्षमा ने दोनों कुलों का संघर्ष रोका

कौरवों और पाण्डवों का युद्ध चल रहा था। कभी वह किसी निमित्त को लेकर उग्र हो जाता, कभी मन्द। इसी दौरान एक दिन अश्वत्थामा ने रात्रि को जब पाँचों पाण्डव तथा उनके पाँचों पुत्र सोये हुए थे, उन पाँचों पुत्रों को पाण्डव समझकर वध कर डाला। द्रौपदी को जब पता लगा तो वह चित्कार उठी। सभी पाण्डव जग गए और अपराधी को खोजने लगे। भीम उसे पकड़ कर लाया। सबने कहा—"इसे द्रौपदी ही दण्ड देगी, क्योंकि इसने उसके हृदय के टुकड़ों का वध किया है।" द्रौपदी के सम्मुख अपराधी को प्रस्तुत करते हुए भीम ने कहा—"इस दुष्ट ने तुम्हारा भयंकर अपराध किया है ; बोलो, इसे क्या दण्ड देना चाहिए।" द्रौपदी ने धीर गम्भीरता पूर्वक विचार करके

कहा—"इसे क्षमा कर दो। इसको मारने से इसकी माँ को भी उसी प्रकार का दुःख होगा, जैसा मुझे अपने पुत्रों को इसके द्वारा मारने का दुःख है। अतः इसे छोड़ दो। अन्यथा, यह वैर की परम्परा आगे बढ़ेगी। इसके पक्षवाले आप से वैर का बदला लेंगे, फिर आपके पक्ष के लोग उनसे बदला लेंगे। इस प्रकार की हिंसा-प्रति-हिंसा से अशान्ति की आग बढ़ेगी। दोनों पक्षों को शान्ति नहीं मिलेगी। इसलिए क्षमा से ही इस वैर का अन्त और शान्ति का साम्राज्य स्थापित हो सकता है।"

यह थी सती द्रौपदी के द्वारा अशान्ति को रोकने की अमृतमय विचारधारा।

पारिवारिक एवं सामाजिक शान्ति की अग्रणी : सती मदनरेखा

महासती मदनरेखा ने अपने पति युगबाहु पर उसके बड़े भाई मणिरथ द्वारा विषाक्त तलवार के प्रहार करने से मरणासन्न अवस्था में उसकी मानसिक शान्ति और शुभ लेश्या के लिए चार शरणों का स्वरूप समझाया तथा बड़े भाई के प्रति लेशमात्र भी क्रोध, द्वेष, वैरभाव आदि तथा अपनी पत्नी एवं सन्तान के प्रति मोहभाव मन से निकलवा दिया। उसके कारण परिवार में, राज्य में किसी प्रकार की अशान्ति नहीं हुई; न ही महासती मदनरेखा के पुत्र में किसी प्रकार से वैर का बदला लेने की भावना जगी।

इस प्रकार सती मदनरेखा ने आत्म शान्ति, मानसिक शान्ति एवं पारिवारिक शान्ति रखने का प्रयत्न किया। यह अद्भुत पुरुषार्थ विश्व शान्ति का प्रेरक था।

शासन सूत्र महिला के हाथ में हो तो युद्ध की विभीषिका मिट जाए

आज भी विश्व में कई जगह युद्ध, आतंक, कलह एवं संघर्ष के बादल मंडरा रहे हैं, वे कब कहर बरसा दें कुछ कहा नहीं जा सकता। ताजा खाड़ी युद्ध कितनी अशान्ति का कारण बना। इरान और अमेरिका के राष्ट्रनायकों ने इस युद्ध में लाखों मनुष्यों का संहार एवं अरबों डालरों का व्यय किया, इनके उपरान्त भी जान-माल की बेहद क्षति हुई सो अलग! परिणाम में अशान्ति ही मिली, *क्योंकि यह दो व्यक्तियों के अहंकार की लड़ाई थी।* अगर कोई महिला राष्ट्रनेत्री होती तो निःसन्देह यह सब नहीं करती। उसकी करुणा, वत्सलता और मानवता ही उसे ऐसा अशान्तिजनक कार्य न करने देती।

विश्व के राष्ट्रों में परस्पर भ्रातृत्वभाव, सह-अस्तित्व, सौहार्द स्थापित एवं इन सबके द्वारा विश्व शान्ति स्थापित करने के लिए पहले 'लीग ऑफ

नेशन्स' बना, तत्पश्चात् संयुक्त-राष्ट्र-संघ (U.N.O.) इसी उद्देश्य से स्थापित हुआ था। परन्तु उसका नेतृत्व पुरुष के बजाय किसी करुणाशील वात्सल्यमयी महिला के हाथ में होता तो आज विश्व-राष्ट्रों में जो अशान्ति है, वह नहीं दिखाई देती। दुर्भाग्य से, इस संस्था पर भी वर्चस्व प्रायः पुरुषों का ही रहा। अगर पुरुष के बदले कोई वात्सल्यमयी महिला इसकी सूत्रधार होती तो परिवार, समाज एवं राष्ट्रों के बीच होने वाले मनमुटाव, संघर्ष, आन्तरिक कलह, अतिस्वार्थ आदि अवश्य ही मिट जाते।

विश्व के कई राष्ट्रों के आपसी तनाव, रस्साकस्सी और आन्तरिक विग्रह को देखकर सर्वोदयी सन्त विनोबा ने एक बार ये उद्‌गार निकाले थे—पुरुषों की अपेक्षा किन्हीं योग्य महिलाओं के हाथों में राष्ट्रों का शासनसूत्र सौंपना चाहिए, क्योंकि पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं में प्रायः नम्रताः, सहनशीलता, निरहंकारता, वत्सलता एवं अहिंसा की शक्ति आदि गुण अधिक मात्रा में विकसित होते हैं। महिला के हाथ में शासनसूत्र आने पर युद्ध, संघर्ष और तनाव की विभीषिका अत्यन्त कम हो सकती है, क्योंकि महिलाओं का करुणाशील हृदय युद्ध और संघर्ष नहीं चाहता। वह विश्व में शान्ति चाहता है।

इसी दृष्टि से एक बार स्व० विजयलक्ष्मी पण्डित संयुक्त-राष्ट्रसंघ की अध्यक्षा चुनी गई थी। यह बात दूसरी है कि उन्हें राष्ट्र-राष्ट्र के बीच शान्ति स्थापित करने का अधिक अवसर नहीं मिल सका। यदि वह अधिक वर्षों तक इस पद पर रहती तो हमारा अनुमान है कि वह विश्व के अधिकांश राष्ट्रों में शान्ति का वातावरण बना देतीं।

संसार के इतिहास पर दृष्टिपात किया जाए तो स्पष्ट प्रतीत होगा कि विश्व में शांति के लिए तथा विभिन्न स्तर की शान्त क्रान्तियों में नारी की असाधारण भूमिका रही है। जब भी शासनसूत्र उसके हाथ में आया है, उन्होंने पुरुषों की अपेक्षा अधिक कुशलता, निष्पक्षता एवं ईमानदारी के साथ उसमें अधिक सफलता प्राप्त की है।

इन्दौर की रानी अहिल्याबाई, झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, कर्णाटक की रानी चेन्नम्मा, महाराष्ट्र की चाँद बीबी सुलताना, इंग्लैण्ड की सम्राज्ञी विक्टोरिया, इजराइल की गोल्डामेयर, श्रीलंका की श्रीमती बंदारनायके, ब्रिटेन की एलिजावेथ, भारत की भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी आदि महानारियाँ इसकी ज्वलन्त उदाहरण हैं। पुरुषशासकों की अपेक्षा स्त्रीशासिकाओं की सूझ-बूझ, करुणापूर्ण दृष्टि, सादगी, सहिष्णुता, मितव्ययिता,

अविलासिता, तथा शान्ति स्थापित करने की कार्यक्षमता इत्यादि विशेषताएँ अधिक प्रभावशाली सिद्ध हुई हैं।

विश्वशान्ति के कार्यक्रम में महिला द्वारा महत्वपूर्ण भूमिका

यही कारण है कि श्रीमती इन्दिरा गाँधी को कई देश के मान्धाताओं ने मिलकर गुट-निरपेक्ष आन्दोलन की प्रमुखा बनाया था। उनकी योग्यता से सभी प्रभावित थे। इन्दिरा गाँधी ने जब गुट-निरपेश राष्ट्रों के समक्ष शस्त्रास्त्र घटाने, अणुयुद्ध न करने तथा आणविक अस्त्रों का विस्फोट बन्द करने का प्रस्ताव रखा तो प्रायः सभी राष्ट्रों ने विश्वशान्ति के सन्दर्भ में प्रस्तुत इन प्रस्तावों का समर्थन एवं स्वागत किया। ऐसा करके स्व० इन्दिरा गाँधी ने सिद्ध कर दिया कि महिला भी विश्वशान्ति के कार्यक्रम में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकती है।

इतना ही नहीं, जब भी किसी निर्बल राष्ट्र पर दबाव डालकर कोई सबल राष्ट्र उसे अपना गुलाम बनाना चाहता, तब वे निर्बल राष्ट्र के पक्ष में डटी रहतीं, खुल कर बोलती थी। हालांकि इस के लिए उनके अपने राष्ट्रों की नाराजी और असहयोग का शिकार होना पड़ा। बंगला देश (उस समय के पूर्वी पाकिस्तान) पर जब (पश्चिमी) पाकिस्तान द्वारा अमेरिका के सहयोग से अत्याचार ढहाया जाने लगा, तथा वहाँ के निरपराध नागरिकों, बुद्धिजीवियों और महिलाओं पर हत्या, लूटपाट, बलात्कार और दमन का चक्र चलाया जाने लगा तब करुणामयी इन्दिरा गाँधी का मातृहृदय द्रवित हो उठा। उन्होंने तुरन्त संयुक्त राष्ट्र संघ में अपनी आवाज उठाई। उसकी उपेक्षा होते देख भारत की आर्थिक क्षति उठा कर भी यहाँ के कुशल योद्धाओं को वहाँ के नागरिक और नेताओं की पुकार पर भेजा और कुछ ही दिनों में बंगलादेश को पाकिस्तान के चंगुल से छुड़ा कर स्वतंत्र कराया।

इससे यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि विश्वशान्ति के कार्य में एक महिला अवश्य ही कार्यक्षम हो सकती है।

भारतीय स्वतंत्रता के लिए जब महात्मा गाँधीजी ने अहिंसक संग्राम छेड़ा तब कस्तूरबा गाँधी आदि हजारों नारियाँ उस आन्दोलन में अपने धन-जन की परवाह किये बिना कूद पड़ी थीं। उन्होंने जेल की यातनाएँ भी सहीं, सत्याग्रह में भी भाग लिया।

फ्रांसीसी स्वतन्त्रता-संग्राम की संचालिका 'जोन ऑफ आर्क' भी इसी प्रकार की महिला थी, जिसने राष्ट्रभक्ति से प्रेरित होकर अपनी सुख-सुविधाओं को तिलांजलि देकर भी राष्ट्र की शान्ति और अमनचैन के लिए कार्य किया।

सेवा और सहानुभूति के क्षेत्र में नारी का योगदान

सेवा और सहानुभूति भी विश्वशान्ति के दो फेफड़े हैं। इन दोनों क्षेत्रों में पुरुषों की अपेक्षा विश्व भर की महिलाएँ आगे हैं। उन्होंने अपने शरीर की सुख-सुविधाओं तथा ऐश आराम की परवाह किये बिना सेवा के विभिन्न कार्यक्रमों में अपना योगदान दिया है, दे रही हैं। हॉस्पिटलों में घायलों, दुःसाध्य रोगियों, कुष्ठरोगियों तथा विभिन्न चेपी रोगों से पीड़ित रोगियों विशेषतः प्रसवकाल की पीड़ा से पीड़ित महिलाओं की सेवा के लिए विश्व भर में सर्वत्र नर्सें तो कार्य करती ही हैं, उनके अलावा भी ऐसी महिलाएँ भी हैं, जो सर्दी गर्मी, बर्षा आदि की परवाह किये बिना निःस्वार्थ भाव से चिकित्सालयों में अपनी सेवाएँ देती रहती हैं। गुजरात में कु० काशी बहन मेहता (जैन) तथा महाराष्ट्र में श्रीमती मनोरमा बहन बण्डेरिया (जैन) प्रभृति कई महिलाएँ वर्तमान में चिकित्सा-सेवा के क्षेत्र में निस्वार्थ रूप से पूर्णरूपेण सेवा दे रही हैं। कई महिलाएँ, यथा बम्बई में ललिता बहन, अहमदाबाद में लीला बहन, कलकत्ता में प्राणकुंवर बहन आदि बहनें महिलाओं को स्वावलम्बी बनानेवाली संस्थाओं में अपनी सेवाएँ दे रही हैं।

मैंने स्वयं अपनी आँखें से देखा है कि आँखों के ऑपरेशन के समय नेत्र रोगी की सेवा-शुश्रूषा में सैकड़ों महिलाएँ (जो पेशे से नर्स नहीं हैं) अपना योगदान देती हैं।

पशु-पक्षियों की सेवा और रक्षा करना भी विश्वशान्ति का अंग है। महात्मा गाँधी जी की शिष्या मीरा बहन (मिस स्लेड) ने हिमालय की गोद में रह कर 'पशुलोक' संस्था के द्वारा वहाँ के मानवों और पशु-पक्षियों की सेवा में अपना सारा जीवन समर्पित कर दिया था।

अनाथ, असहाय, एवं अभावपीड़ित बालकों मनुष्यों तथा भूकम्प बाढ़ आदि प्राकृतिक प्रकोपों से पीड़ित मानवों की सेवा में मातृ-हृदय मदर टेरेसा ने अपना समग्र जीवन समर्पित कर दिया है।

बंगाल के सतीशचन्द्र विद्याभूषण, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर आदि भारतीय-जनों की माताओं ने भूकम्प, बाढ़, दुष्काल तथा अन्य प्राकृतिक प्रकोपों से पीड़ित नरनारियों की सेवा के लिए अपने हाथों से दान की अजस्र धारा प्रवाहित की।

रेड क्रोस आन्दोलन को जन्म देने वाली 'फ्लोरेंस नाइटिंगल' को कौन नहीं जानता ? जिसने युद्ध में घायलों तथा अन्यान्य प्रकार से पीड़ितों की सेवा के लिए महिलाओं की टीम विभिन्न देशों में तैयार की थी। अनेक रोगों को

मिटाने में अचूक रेडियम' की आविष्कारक 'मैडम क्यूरी' का नाम विश्वशान्ति के इतिहास में अमर है।

प्लेग, मलेरिया, कैंसर, टी० बी० आदि दुःसाध्य व्याधियों, भूकम्प, बाढ़, दुष्काल आदि प्राकृतिक प्रकोप, तथा अन्य उपद्रव भी मानव जाति की अशान्ति के कारण हैं। इन और ऐसे ही अन्य प्रकोपों या उपद्रवों के समय पीड़ित जनता की सेवा शुश्रूषा करना तथा रोग-निवारण में सहयोग देना इत्यादि कार्य भी शान्तिदायक हैं। इन सेवाकार्यों में भी पुरुषों के अनुपात में महिलाएँ बहुसंख्यक रही हैं।

दुर्व्यसनों से बचाने में महिलाओं का हाथ

जूआ, चोरी (डकैती, तस्करी, ठगी, लूटपाट आदि), मांसाहार, शिकार, मद्यपान, वेश्यागमन, पर-स्त्रीगमन, सिगरेट, बीड़ी, अफीम, हिरोइन, ब्राउनसुगर आदि नशीली चीजों में से किसी भी प्रकार का दुर्व्यसन हो, वह मानव जीवन को अशान्त एवं पराधीन बना देता है। जो देश दुर्व्यसनों का जितना अधिक शिकार हो जाता है, वहाँ उतनी ही अधिक परतन्त्रता, गुलामी, आर्थिक दृष्टि से पिछड़ापन, शोषण, अन्नादि की कमी, स्वार्थान्धता, ठगी, भ्रष्टाचार, तस्करी आदि का दौरदौरा चलता है, जो शारीरिक मानसिक एवं बौद्धिक अशान्ति पैदा करता है। इन दुर्व्यसनों के शिकार महिलाओं की अपेक्षा पुरुष ही अधिक हैं। पुरुषों को, खासतौर से अपने पति तथा पुत्रों को इन दुर्व्यसनों से बचाने में अथवा दुर्व्यसन छुड़ाने में पुरुषों की अपेक्षा महिला वर्ग का हाथ अधिक रहा है। जैन साध्वियाँ तो गाँव-गाँव में पैदल भ्रमण (विहार) करके इन दुर्व्यसनों का त्याग कराती ही हैं, सामाजिक कार्यकर्त्री, जनसेविका बहनों ने भी इस क्षेत्र में काफी कार्य किया है और इन दुर्व्यसनों से परिवार, समाज और राष्ट्र में बढ़ती हुई अशान्ति का निवारण किया है। स्वतन्त्रता-संग्राम के दौरान शराब छुड़ाने आदि आन्दोलनों में पिकेटिंग करके तथा अपमान, कष्ट आदि सहकर भी कई प्रबुद्ध महिलाओं ने शान्ति स्थापित की है। छत्तीसगढ़, मयूरभंज इत्यादि आदिवासी क्षेत्रों में, जनता में बढती हुई शराबखोरी, तथा नशेबाजी को रोकने के लिए वहीं की एक आदिवासी महिला—विन्ध्येश्वरी देवी ने जी-जान से कार्य किया है। वह जहाँ-जहाँ भी जाती, लोगों को पुकार-पुकार कर कहती—"शराब तथा नशीली चीजें छोड़ो। हमारा भगवान् शराब आदि का सेवन नहीं करता। इससे तन, मन, धन और जन की भयंकर हानि होती है और अशान्ति बढ़ती

है।'' उसके इन सीधे सादे, किन्तु असरकारक शब्दों को सुनकर उस क्षेत्र के लाखों लोगों ने शराब तथा अन्य नशीली चीजें छोड़ दीं।

परस्त्री-गमन एवं वेश्यागमन (अथवा वेश्याकर्म) ये दो सामाजिक एवं राष्ट्रीय जीवन में अशान्ति के बहुत बड़े कारण हैं। इन दोनों महापापों के कारण प्राचीनकाल में भी और वर्तमान काल में भी राष्ट्र के धन-जन की बहुत बड़ी हानि हुई है। सुरा और सुन्दरी के चक्कर में पड़ कर बड़े-बड़े राजाओं, बादशाहों, शासनकर्ताओं, पदाधिकारियों, भ्रष्टाचारियों ने अपना जीवन बर्बाद किया, और पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन में संघर्ष, अशान्ति और वैमनस्य के बीज बोये। परन्तु अशान्ति के कारणभूत इन दोनों महापापों से बचाने का अधिकांश श्रेय महिलाओं को है। भारतीय सती-साध्वियों तथा पतिव्रता महिलाओं ने कई पुरुषों को इन दोनों दुर्व्यसनों के चंगुल से छुड़ाया है। कई शीलवती महिलाओं ने तो अपनी जान पर खेल कर अनेक भ्रष्ट शासकों, सत्ताधीशों, धनाधीशों तथा भ्रष्ट अधिकारियों को इन दोनों कुव्यसनों के चंगुल से छुड़ाया है। कई शीलवती नारियों को परस्त्रीसेवनरत कामुक पुरुषों का हृदय परिवर्तन एवं जीवन-परिवर्तन भी किया है। कई महान् नारियों ने विधवा एवं वयस्क नारियों को कुमार्ग पर भटकने से रोक कर शिक्षा और समाजसेवा के कार्यों में लगा दिया। महासती राजीमती ने रथनेमि को पथ-भ्रष्ट होने से रोक कर पुनः संयम के पवित्र पथ पर आरुढ़ किया था। भक्त मीरा बाई ने गुसांईजी की परस्त्री के प्रति कुदृष्टि की वृत्ति बदली है। इसी प्रकार शीलवती मदनरेखा, महासती सीता, द्रौपदी आदि महान् सतियों ने परस्त्रीगामी पुरुषों को सत्पथ पर लाने का पुरुषार्थ किया।

अन्धविश्वास और कुरुढ़ियों के पालन से बढ़ने वाली अशान्ति का निवारण

अन्धविश्वास और कु-रुढ़ियों तथा कुप्रथाओं (पशुबलि, नरबलि, मद्यार्पण आदि) के पालन से मानवजीवन में अशान्ति बढ़ती है। परन्तु ऐसी कई साहसी और निर्भीक महिलाएँ हुई हैं, जिन्होंने समाज में प्रचलित निरक्षरता, अशिक्षा, दहेज, पर्दाप्रथा, मृत्युभोज तथा विविध अन्धपरम्पराएँ, अन्धविश्वास एवं कुरुढ़ियों को स्वयं तोड़ा है और समाज एवं जाति को ऐसी कुप्रथाओं तथा कु-रुढ़ियों से बचाया है। वात्सल्यमयी माताएँ ही इस प्रकार की अशान्तिवर्द्धक प्रवृत्तियों से समाज को बचा सकती हैं।

तप, जप, त्याग, व्रत, नियम में नारी पुरुषों से आगे

सभी धर्मों के धर्मस्थानों को टटोला जाए तो स्पष्ट प्रतीत होगा कि

पुरुषों की अपेक्षा महिलाएँ श्रद्धा-भक्ति, तप-जप, व्रत-नियम, त्याग-प्रत्याख्यान आदि धर्म क्रियाओं में आगे रही हैं। वैसे देखा जाए तो तप, जप, ध्यान, त्याग, नियम, व्रत, प्रत्याख्यान आदि से आत्मा की शक्तियाँ तो विकसित होती ही हैं, किन्तु इनसे भूकम्प, बाढ़, दुष्काल, कलह, युद्ध, आतंक, उपद्रव आदि परम्परा से अशान्ति के कारण भी दूर हो जाते हैं, अथवा अशान्ति कम हो जाती है। यदि तप, जप आयम्बिल के सहित सामूहिक रूप से व्यवस्थित ढंग से किये जाये तो निःसन्देह अशान्ति के बीज नष्ट हो सकते हैं। तप, जप, त्याग आदि पूरी समझदारी और सूझ-बूझ से किये जाएँ तो शारीरिक और मानसिक बल एवं स्वास्थ्य आदि में वृद्धि हो सकती है।

महिलाओं को अवसर मिलना चाहिये

आज भी जीवन के हर क्षेत्र की प्रतियोगिता में नारी अपनी प्रतिभा का परिचय दे रही है, दे सकती है। उत्तरदायित्व का जो भी कार्य महिलाओं को सौंपा जाता है, उसे वे सफलता के साथ सम्पन्न करती हैं। भारतीय धर्मग्रन्थ भी एक स्वर में कहते हैं—'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।'

'जहाँ नारियों की पूजा-भक्ति होती है, वहाँ देवता (दिव्य पुरुष) क्रीड़ा करते हैं।' यह प्रतिपादन अक्षरशः सत्य है।

वस्तुतः नारी शान्ति और भावना की मूर्ति है

नारी समाज का भावपक्ष है और नर है कर्मपक्ष। कर्म को उत्कृष्टता और प्रखरता से भर देने का श्रेय भावना को है। नारी का भाव-वर्चस्व जिन परिस्थितियों एवं समाजिक, आध्यात्मिक एवं धार्मिक क्षेत्रों में बढ़ेगा, उन्हीं में सुखशान्ति की आधारशिला बन सकती है, बशर्ते कि उसके प्रति सम्मानपूर्ण एवं श्रद्धासिक्त व्यवहार रखा जाए। यदि नारी को दबाया-सताया न जाए तथा उसे विकास का पूर्ण अवसर दिया जाए तो वह ज्ञान में, साधना में, तप-जप में, त्याग-वैराग्य में, शील और दान में, प्रतिभा, बुद्धि और शक्ति में, तथा जीवन के किसी भी क्षेत्र में पिछड़ी नहीं रह सकती। साथ ही वह दिव्य भावना वाले व्यक्तियों के निर्माण एवं संस्कार प्रदान में तथा परिवार, समाज, एवं राष्ट्र की चिरस्थायी शान्ति और प्रगति में महत्त्वपूर्ण योगदान कर सकती है। परम्परा से विश्वशान्ति के लिए वह महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकती है। नारी मंगलमूर्ति है, वात्सल्यमयी है, दिव्य शक्ति है। उसे वात्सल्य, कोमलता, नम्रता, क्षमा, दया सेवा आदि गुणों के समुचित विकास का अवसर देना ही उसका पूजन है, उसकी मंगलमयी भावना को साकार होने देना, विश्वशान्ति के महत्वपूर्ण कार्यों में उसे योग्य समझ कर नियुक्त करना ही उसका सत्कार सम्मान है। तभी वह विश्वशन्ति को साकार कर सकती है।

त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र

श्री हेमचन्द्राचार्य

[पूर्वानुवृत्ति]

हरिवंशोत्पन्न सुमित्र उस समय वहाँ राज्य करते थे। वे मुक्ता की तरह निष्कलंक और सूर्य की भाँति भास्वर थे। दुष्टों को दमन करने वाले विजयलक्ष्मी के प्रतिरूप और राजाओं में अग्रगण्य वे इस पृथ्वी का भार नवम दिक्‌हस्ती की तरह या अष्टम वर्षधर या द्वितीय शेषनाग की तरह वहन करते थे। उदारता दृढ़ता, गाम्भीर्य आदि सब गुण जिन आगमन के सूचक होते हैं वे गुण उनमें पूर्णमात्रा में विद्यमान थे। हरिप्रिया पद्मावती की तरह उनकी पत्नी का नाम भी पद्मावती था। उनके द्वारा यह पृथ्वी पवित्र हो रही थी। आकाश जैसे चन्द्र द्वारा अलंकृत होता है उसी प्रकार राजा का यश समस्त पृथ्वीके आनन्द उत्स रूप उनके यश द्वारा अलंकृत हो रहा था। उनका चारित्र आदि सुरभिगुण, वस्त्रों को जिस प्रकार सुरभित चूर्ण द्वारा सुरभित किया जाता है उसी प्रकार राजा के हृदय को सुरभित कर रखा था। आकाश के नक्षत्र तुल्य उनकी अनन्त गुण राजि का वर्णन वृहस्पति भी यदि करें तो उसका अन्त नहीं हो सकता। उनके प्रेम के कारण ही पृथ्वी ने मानो रूप धारण किया है ऐसे पद्मावती के साथ पृथिवीपति सुमित्र सुखभोग करने लगे।

आनन्द सागर में निमज्जित सुरश्रेष्ठ का जीव प्राणत कल्प का आयुष्य पूर्ण कर वहाँ से च्युत होकर श्रावण महीने की पूर्णिमा को चन्द्र जब श्रवणा नक्षत्र में अवस्थित था रानी पद्मावती की कुक्षि में प्रविष्ट हुआ। रात्रि के शेष याम में सुख शय्या पर सोयी हुयी उन्होंने तीर्थंकर के जन्म सूचक चौदह महा स्वप्न देखे।

समय पूर्ण होने पर ज्येष्ठ कृष्णा अष्टमी तिथि को चन्द्र जब श्रवणा नक्षत्र में अवस्थित था उन्होंने कूर्मलांछन, तमाल से कृष्ण वर्ण युक्त एक पुत्र को जन्म दिया। दिक् कुमारियों के द्वारा उनका जन्म कृत्य सम्पन्न कर देने के पश्चात् इन्द्र उन्हें मेरु पर्वत पर ले गए। शक्र की गोद में बैठे जगदगुरु को त्रेषठ इन्द्रों ने तीर्थ से लाए पवित्र जल से स्नान करवाया। बाद में ईशानेन्द्र की गोद में बैठाकर शक्र ने उन्हें स्नान करवाया। तदुपरान्त उनकी पूजा कर इस प्रकार स्तुति की—

वर्तमान अवसर्पिणी रूप सरिता के श्रेष्ठ कमल रूप आपको भाग्य वश ही बहुत दिनों के पश्चात भ्रमर रूप हमलोगों ने प्राप्त किया है। हे भगवन्, आज मेरा मन बचन काया आपकी पूजा, ध्यान और स्तव पाठ से धन्य हो गया है। मेरी भक्ति आप के प्रति जितनी दृढ़ हो रही है मेरे कर्म उतने ही क्षीण हो रहे हैं। हे प्रभु, हम असंयमी का जीवन व्यर्थ हो जाता यदि आपका दर्शन प्राप्त नहीं होता। पुण्योदय से ही यह सम्भव हुआ है। हमारी इन्द्रियाँ आपका स्पर्श कर, आपका गुणगान कर, जो पुष्प आपको प्रदत्त किए हैं उनका आघ्राण कर आपके रूप का दर्शन कर आप के गुणों का श्रवण कर सार्थक हो गए हैं। वर्षाकालीन मेघ नेत्रों को जिस प्रकार आनन्द देता है उसी प्रकार आप सहित मेरु पर्वत का नीलकान्त मणि शृंग हमें आनन्द दे रहा है। हे सर्वतो-स्थित आपके भरतवर्ष में रहने पर भी हम जहाँ भी रहें हमारे कष्ट निवारण के लिए स्मरण करने पर हमारे निकट उपस्थित हो जाते हैं। स्वर्ग से जब हम च्युत होंगे तब आपके चरण का ध्यान करते-करते च्युत हों ताकि भावी जन्म में इस जन्म में किया आपका स्नात्रोत्सव सुकृत रूप में हमारे साथ रहे।

बीसवें तीर्थंकर की इस प्रकार स्तुति कर इन्द्र उन्हें ले जा कर रानी पद्मावती के पास यथा रीति सुला दिया।

दूसरे दिन सुबह राजा सुमित्र ने बंदियों को मुक्त कर प्रजाजनों को उपहार देकर आनन्दित करते हुए पुत्र जन्मोत्सव मनाया। जातक जब गर्भ में था तब उसकी माँ मुनि-सा व्रत पालन करती थी अतः उसका नाम रखा गया मुनि सुव्रत। यद्यपि वे तीन ज्ञान के धारक थे फिर भी जैसे उन्हें कोई ज्ञान नहीं है इस प्रकार क्रीड़ा करते हुए प्रभु क्रमशः बड़े हुए। जब वे बीस धनुष की लम्बाई प्राप्त कर युवा हुए तब उन्होंने प्रभावती आदि राजकन्याओं से विवाह किया। पूर्व दिशा जिस प्रकार चन्द्र को जन्म देती है उसी प्रकार प्रभावती ने सुव्रत नामक मुनि सुव्रत प्रभु के पुत्र को जन्म दिया। जब साढ़े सात हजार वर्ष व्यतीत हो गए तब उन्होंने पितृ प्रदत्त राज्य भार ग्रहण किया। भोगावली कर्मों को भोग कर ही क्षय किया जाता है यह जानकर उन्होंने ४५ हजार वर्ष राज्य संचालन में व्यतीत किए।

लोकान्तिक देवों द्वारा 'तीर्थ स्थापन करिए' यह सुनकर प्रभु ने एक हजार वर्ष तक दान दिया। मुनि सुव्रत प्रभु ने विग्रह नीतिविद और नीति रूपी कमल के लिए भ्रमर स्वरूप स्वपुत्र सुव्रत को सिंहासन पर बैठाया। उनका अभिनिष्क्रमण समारोह राजा सुव्रत और देवों ने मिलकर अनुष्ठित

किया। एक हजार आदमी वहन कर सके ऐसी अपराजिता नामक शिबिका में बैठकर प्रभु नीलगुहा नामक उद्यान में गए। वह उद्यान आम्रवृक्षों से सुशोभित था। उन वृक्षों की मंजरियाँ दन्तपंक्ति व किशलय जिह्वा-सी लग रही थी। हवा से झर कर इधर-उधर उड़ते सूखे पत्रों का मर्मर वसन्त के आगमन की सूचना दे रहा था। सिन्धुवार पुष्पों के सम्भार से लज्जित हुए युथी पुष्प म्रियमाण हो गए थे। शीतलता व सुगन्ध से सोमराज पुष्प सबके मन को हरण कर रहे थे।

फाल्गुन मास की शुक्ला द्वादशी को चन्द्र जब श्रवणा नक्षत्र में अवस्थित था प्रभु ने एक हजार राजाओं सहित दो दिनों के उपवास के पश्चात दीक्षाग्रहण कर ली। दूसरे दिन सुबह राजगृहके राजा ब्रह्मदत्तके घर खीर ग्रहण कर उन्होंने बेले का पारणा किया। देवों ने रत्नवर्षादि पाँच दिव्य प्रकट किए और राजा ब्रह्मदत्त ने जहाँ प्रभु खड़े थे वहाँ रत्न वेदी निर्माण करवायी। निरासक्त सर्व कामवर्जित होकर परिषहों को सहन करते हुए प्रभु ने छद्मस्थ की भाँति ग्यारह महीनों तक विचरण किया।

[क्रमशः

संकलन

॥ उत्सव/जयन्ती के माध्यम से जैन जागरण ॥

समारोहों/उत्सवों/पर्वों आदि को व्यर्थ नहीं कहा जा सकता, उनके महत्व को नकारा नहीं जा सकता, उनका समाज के लिए, राष्ट्र के लिए विशेष महत्व है। वे चेतना जगाने का, लोकमत निर्माण कराने का मंच प्रस्तुत करते हैं। समाज को सामर्थ्य प्रदान करते हैं। इन आयोजनों पर प्रतिबन्ध लगाना कठिन तो है ही, साथ ही इनके लाभ/प्रभाव से वंचित होना/रखना भी असम्भव है। ये समारोह अपनी उपादेयता स्वतः प्रकट करते हैं। हो सकता है कहीं-कहीं कुछेक आयोजकों में मंच पर विराजमान होने की लोलुपता बलवती हो यहाँ उनकी उपादेयता पर प्रश्नचिह्न लगाना ठीक नहीं जँचता। अपने अन्दर त्रुटियाँ हो सकती हैं, उनका निराकरण करना ही अच्छा होगा, समारोहों के आयोजनों को रोकना अच्छा नहीं होगा। समाज को सुसंस्कारित करने में इन समारोहों का अपना विशिष्ट महत्व है।

उचित होगा कि हम अपने को मताग्रह मुक्त करें, मतान्धता से दूर रहें, विकृतियों का प्रक्षालन करें, जीवन को आदर्शाभिमुख बनायें और पदार्थ के प्रति बढ़ती प्रतिबद्धता को दूर करें। आवश्यकता है दृष्टिकोण में परिवर्तन की।

—डॉ० निजाम उद्दीन

तीर्थंकर, जुलाई १९९१

LODHA MOTORS

A House of Telco Genuine Spare Parts and
Govt. Order Suppliers.
Also Authorised Dealers of Pace-setter and
Nicco Batteries in Nagaland State.

GOLAGHAT ROAD, DIMAPUR
NAGALAND

Phone : 3039, 3174

The Bikaner Woollen Mills

Manufacturer and Exporter of Superior Quality
Woollen Yarn, Carpet Yarn and Superior
Quality Handknotted Carpets

Office and Sales Office :

BIKANER WOOLLEN MILLS

Post Box No. 24
Bikaner, Rajasthan
Phone : Off. 3204
Res. 3356

Main Office :

4 Meer Bohar Ghat Street
Calcutta-700007
Phone : 38-5960

Branch Office :

Srinath Katra : Bhadhoi
Phone : 5378
5578,5778

WB/NC-253

Vol. XV No. 6 **TITTHAYARA** **October 1991**

Registered with the Registrar of Newspapers for India
under No. R. N. 24582/73